

## उपसंहार

मातृ-देवी भारतवर्ष के आदितम सभ्य निवासी एक मातृ-देवी तथा उर्वरणशक्ति के एक श्रृगयुक्त देवता की उपासना किया करते थे। उर्वरण शक्ति देवता जिसकी उपासना हड़प्पा सभ्यता के युग से सम्भवतया जीवित बनी रही, प्रख्याति को प्राप्त हुआ यह देवता पशुपति थे जो वैदिक देवता रुद्र से अभिन्न मान लिये गये तथा उनसे कल्याण की कामना हेतु उनका सम्बोधन शिव किया गया जो बाद के काल में अत्यधिक प्रख्यात हुआ और सामान्य रूप से उनकी पूजा लिंग प्रतीक के रूप में भी प्रचलित हुई बाद में शिव के साथ कुछ अन्य देवता यथा स्कन्द एवं गणेश को सम्बद्ध कर दिया गया। गुप्तकाल के अन्त में देवियाँ ऐन्द्रजालिक उपासना पद्धति धार्मिक यौन सम्बन्ध के साथ लोकप्रिय हुई।<sup>1</sup>

भारत में सभी कालों में मातृ-देवी की उपासना प्रचलित रही हैं, किन्तु हड़प्पा सभ्यता और गुप्तकाल की मध्यावधि में देवियों की उपासना पद्धति ने विद्वानों एवं सम्भ्रान्तजनों का ध्यान कम आकृष्ट किया। केवल मध्ययुग में ही यह उपासना वास्तविक महत्ता की स्थिति तक अन्धकार से बाहर आयी, जबकि उच्च वर्ग के लोगों ने एक बार पुनः नारी देवताओं की उपासना जो सिद्धान्त रूप में उसकी पत्नियों के रूप में सम्बद्ध थी प्रारम्भ की।

देवी 'शक्ति' थी जो अपने पुरुष सहयोगी रूप का बल तथा पौरुष थी। ऐसी धारणा थी कि देव अकर्ता एवं अतिश्रेष्ठ था जबकि उसका नारीतत्व क्रियाशील तथा अनगढ़ था। गुप्तकाल तक देवताओं की पत्नियाँ जिनका अस्तित्व सदा से स्वीकार किया जाता रहा था और जो प्रारम्भिक देवज्ञान वाद में छाया कृतियाँ मात्र रह गयी थी, विशेष मन्दिरों में पूजी जाने लगी।

मातृ-देवी की महत्ता उस समय तक निरन्तर बढ़ती गयी जब तक कि भक्तिमग्न वैष्णव धर्म की धारा ने मुस्लिम युग के प्रारम्भ में उत्तरी भारत को अपने प्रवाह में नहीं ले लिया और देवी उपासना पद्धति के विकास को अवरुद्ध कर दिया जो बंगाल तथा आसाम में अब भी प्रबल हैं और भारत के अन्य भागों में भी प्रचलित हैं।

मातृ-देवी का प्रधान रूप शिव की पत्नी का था जिसे उसके परोपकारी पक्ष में पार्वती कहते हैं, (पर्वत की पुत्री) महादेवी (बड़ी देवी), सती, (स्वामीभक्त), गौरी (श्वेतांग) अन्नपूर्ण (भोजन अन्न प्रदान करने वाली) अथवा सामान्य माता (माता तमिल में अग्माई); अपने क्रूर रूप में वह दुर्गा (अगम) के नाम से प्रसिद्ध थी, काली (कालेरूप वाली असितांग) और चण्डी (भयानक) भयंकर तमिल युद्ध की देवी 'कोरवी' जो युद्ध भूमि में आहतों के मध्य नृत्य करती और उनके मांसों को खाती थी, अपनी उत्पत्ति में स्वतन्त्र सत्ता रखती है, प्रारम्भ में शक्ति देवी के साथ एकरूप थी।

अपने भयानक रूप में उसे बहुधा एक भयानक डाहिन के रूप में चित्रित किया गया जिसके सर्वदा अनेक भुजाएँ हैं और जिनमें वह विभिन्न शस्त्र धारण किए रहती है उसके भयावह मांसभक्षी बड़े दाँत, लाल जिह्वा जो मुख से बाहर लपलपाती रहती है और मानव मुण्डों की माला होती है। सिंह उसका वाहन है और कभी-कभी उसे एक सुन्दर एवं सुदृढ़ नारी के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो महिसासुर राक्षस का वध, सेंट जार्ज और डेगन की भाँति कर रही है। देवी का सर्वाधिक कोमल रूप एक सुन्दर नवयुवती का है जिसे अधिकतर अपने स्वामी शिव के साथ चित्रित किया गया है। अर्द्धनारीश्वर मूर्तिकला सम्बन्धी एक रोचक विकास है अर्द्धनारीश्वर एक आकृति है जिसमें अर्द्धरूप शिव तथा अर्द्ध रूप पार्वती का है जिसमें देवता और उसकी शक्ति का मिलन अभिव्यक्त किया गया है। जिस भाँति शिव की आराधना लिंग अथवा लिंग प्रतीक के रूप में होती है उसी भाँति दुर्गा की

पूजा नारी लिंग प्रतीक अथवा योनि रूप में होती है। कथा के अनुसार शिव की पत्नी होने के पूर्व अवतार में पार्वती दक्ष की कन्या सती थी और उस समय भी वह महान देवता शिव की पत्नी थी जब उनके पिता ने उनकी दैवी पति से झगड़ा किये तो वे यज्ञ की ज्वालाओं में कूद पड़ीं और उनके योनि की भस्म भारत के विभिन्न स्थानों पर गिरी। यह स्थान उनकी उपासना के पवित्र अथवा पीठ बन गये।<sup>12</sup>

हड़प्पा सभ्यता में लिंग के आकार की कई वस्तुएँ मिली हैं। बार्थ का कथन है कि किसी काल में देवताओं के प्रतीकों की खोज में अकस्मात हिन्दुओं को योनि और लिंग मिल गये। फूट महोदय को नवीन पाषाण युग का एक सुन्दर लिंग दक्षिण भारत में मिला था। प्रस्तर-ताम्रयुग में लिंगोपासना कई देशों में प्रचलित थी। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में बड़े लिंग तो साधारण चूने के पत्थर के बने हैं किन्तु छोटे लिंग घोंघे के हैं। बड़े लिंग निःसन्देह पूजा के लिए थे। प्राचीन सभ्यताओं में भी लिंगपूजा प्रचलित थी। योनि पूजा भी हड़प्पा सभ्यता में प्रचलित थी। शायद प्राचीन काल में यह विश्वास था कि स्त्रीलिंग के प्रतीक को धारण करने से बुरे ग्रहों की शान्ति होती है अथवा भूत-प्रेत से भय नहीं रहता है।<sup>13</sup>

भारत के विभिन्न नदी घाटी सभ्यताओं के उत्खनन में बहुत मूर्तियाँ और चित्र हड़प्पा तक मोहनजोदड़ो के आसपास से प्राप्त हुए हैं। इनमें झाव और उत्तरी क्वेटा से भी प्राप्त मूर्तियाँ हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि प्राचीन संस्कृतियों में मातृ-देवी की पूजा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित थीं। सिन्धु घाटी में मातृ-देवी की पूजा 'बैल' के रूप में प्रचलित थी।

इसके अतिरिक्त भी हड़प्पा घाटी सभ्यता के समानान्तर दूसरी अन्य प्राचीन सभ्यताओं और धर्मों में भी 'वृषभ' की पूजा के उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन पारसी धर्म में 'प्राइमल बुल'; बैल; संसार की आत्मा का प्रतीक माना जाता था।

पवित्र पुस्तक 'जेण्ड अवेस्टा' में प्राइमल बुल की प्रशस्ति में कई मन्त्र हैं। वे कहते हैं कि—'मैं उस महान वृषभ का आवाहन करता हूँ और स्तुति करता हूँ जो पर्याप्त मात्रा में घासों को उगाता है।'<sup>4</sup>

दूसरे स्थान पर यह संकेत मिलता है कि यह बैल सन्तानोत्पत्ति का देवता है और कहता है कि तुम अपनी प्रार्थना को पवित्र अजन्मा सर्वांगीय वृषभ को अर्पित करो।<sup>5</sup>

बैल को इन्द्र और शिव का रूप माना जाता था। हड़प्पा सभ्यता के कई स्थानों पर बैल के चित्र मिलते हैं और साथ-साथ औरतों की भट्टी, टेराकोटा मूर्तियाँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ नग्न, अर्द्धनग्न और आकर्षक केश कला के साथ हैं। ऐसा माना जाता है कि हर गृहस्थ इस प्रकार की मातृ-देवी की मूर्तियाँ रखता था।<sup>6</sup>

मातृ-देवी के सुनिश्चित अंगों से सम्बन्धित पीठ की धारणा वास्तव में लिंग पूजन से सम्बन्धित थी। महादेव शिव की उपासना का अभ्युदय भगवान शिव के पिता या जनक होने की धारणा से उज्ज्वल हुआ था। जीवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मातृदेवी की योनि स्वाभाविक रूप से उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी भगवान शिव या पिता का लिंग है। आर्यों के पूर्व भी परमपिता भारतीयों द्वारा परमपिता तथा मातृ-देवी की उपासना की जाती थी।<sup>7</sup> मोहनजोदड़ो से प्राप्त मूर्तियाँ यह प्रदर्शित करती हैं कि शिव और सत्य की उपासना मात्र मानवीय स्वरूपों में ही नहीं की जाती थी बल्कि लिंग और योनि के प्रतीकात्मक स्वरूप में भी की जाती थी जो प्रथमतः उत्पत्ति या पौरुषत्व को चित्रित करता है दूसरा मातृत्व या उत्पादकता को चित्रित करता है। ऋग्वेद 7, 21, 5, 10, 99, 3 में प्रतिकूल वर्ग के लोगों

के बारे में चर्चा है जिसे शिश्नदेव कहा जाता था।<sup>१०</sup> जिसमें हमें लिंग उपासकों के प्रारम्भिक साहित्यिक सन्दर्भ प्राप्त हैं। पवित्र या दैवी माँ की योनि की दैविक उपासना कुछ तान्त्रिक मूल ग्रन्थों में वर्णित है जैसा कि योनि तन्त्र। यह ध्यान देने योग्य मनोरंजक बात है कि माँ देवी का लोकप्रिय नाम भगवती भी है शाब्दिक रूप से भग युक्त देवी जैसा कि भग शब्द योनि का पर्याय है यह कहना सम्भव है कि यद्यपि यह लोगों की ज्ञान की वर्तमान स्थिति में सिद्ध करना आसान नहीं है; भगवती मूलरूप से स्त्री दम्बी के वर्णन का संकेत करती है जिसे सम्पूर्ण सृष्टि का जन्मदाता माना जाता है और भगवत की उपाधि शिव या अन्य देवताओं पर लागू होती है जो पुलिंग स्वरूप ही है जिसकी आधारभूत कल्पना भगवती है। यह भी संकेत किया जाना चाहिए कि प्राचीन कालीन स्वयं भू शिवलिंग पर्वत शिखरों पर भद्रे ढंग की मानवीय लिंग के अनुरूप हैं यह विश्वास करना तर्कसंगत है कि विशिष्ट आकार वाले तालाब माँ देवी की योनि के रूप में कल्पित थे। युगल पहाड़िया माँ शिखरों के आकार और स्त्री वक्षस्थल की स्थिति को उसी प्रकार से कभी-कभी माँ देवी का स्तर समझा जाता है रघुवंश 4, 51 में पाण्ड्य देश की दरदुरा और मलय पर्वतों माँ दक्षिणी भाग का कालीदास का वर्णन महिला के दो स्तनों का है।<sup>११</sup> ऐसी पहाड़ियों पर बहता हुआ निर्झर जल माँ देवी का सहज दुग्ध माना जाता है। ये तीनों धारणाएँ अर्थात् परम पिता का लिंग माँ देवी की योनि एवं माँ देवी का स्तन तीन विशिष्ट अवयवों के धारण से है जो प्राणियों के जन्म और विकास के सहज मानवीय विशिष्ट अंगों के समतुल्य है। प्राचीन काल के भारतीयों ने योनि कुण्ड में स्नान की धारणा और स्तन कुण्ड के जलपान को अत्यधिक महत्व दिया होगा जो अन्य शास्त्रोक्त हिरण्य गर्भ महादान के रूप में विख्यात थे और माँ देवी के योनि कुण्ड के रूप में प्रतीक थे। एक पवित्र राजकुमार श्रेष्ठता की इच्छा एवं तत्परता से महादान करने के लिए कभी-कभी हिरण्य गर्भ या स्वर्ण गर्भ निर्मित करता था

जो स्वर्ण निर्मित बड़ा पात्र तीन हाथ की ऊंचाई का होता था तत्पश्चात् उसके इस पात्र में प्रविष्ट के पश्चात् पुरोहित गर्भाधान पुंसवन और शिमान्तोनयन संस्कार करते थे। इस क्रिया को महिला की सामान्य गर्भ की स्थिति में भी करते थे। इसके बाद राजकुमार हिरण्य गर्भ से बाहर आता था। तत्पश्चात् पुरोहित जात कर्म और अन्य आवश्यक उत्सव कराते थे मानो कि राजकुमार नवजात शिशु है तत्पश्चात् राजकुमार घोघणा करता था कि देवताओं की महती कृपा से इसके पूर्व मैं अपनी माँ की गर्भ से पैदा हुआ था और मुझमें भौतिक प्राणियों के ही गुण थे और अब माँ देवी के गर्भ से पुनर्जन्म के कारण अब मेरा देवी शरीर हो गया। हिरण्य गर्भ महादान उत्सव का अभ्यास मातृ-देवी के भगवान विष्णु के उपासकों द्वारा मातृ-देवी के संस्कारों के अनुकूल अभ्यास के लिए हुआ है। जैसे कि प्रतीक रूपों में लिंग योनि तथा स्तन अत्यन्त ही प्राचीन प्रतीत होते हैं। भारत की प्राचीन धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था इस बात का सुझाव देती है कि ये धारणाएँ अन्य धारणाओं की भाँति अनार्यों के भारतीय आर्यों के संस्कृत के प्रभाव के कारण हैं।<sup>10</sup>

ऐसा प्रतीत होता है कि पीठों के प्रारम्भिक स्तर से इतिहास से माँ देवी के निश्चित अंगों योनि तक स्तन का सम्बन्ध रहा है। महाभारत के वनपर्व तीर्थयात्रा वर्ग जिनमें तीन पवित्र शक्ति स्थल का सम्बन्ध शक्ति के योनि और स्तन से है। उदयतपर्वत की चोटी पर भीम स्थान और योनिकुण्ड है, जो पंचनद पंजाब की पहाड़ियों पर है और स्तन कुण्ड महाभारत के गौरी शिखर पर है।<sup>11</sup> गौरी शिखर का शाब्दिक अर्थ माँ गौरी के स्वरूप से है जो हिमालय की चोटियों से सम्भावित सम्बन्ध रखती है।<sup>12</sup> ऐसा जान पड़ता है कि गौरी शिखर और उदयतपर्वत दोनों ही को महाभारत का पूर्वी भारत में रख रहा है। उदयतपर्वत को सम्भवतः गया क्षेत्र में जो कि इसकी वास्तविक पहचान शंका से परे नहीं फिर भी जब हम पीठ निर्णय के सिद्धान्त को लेते हैं तो आसाम के गौहाटी क्षेत्र के कामरूप क्षेत्र हमें

आकृष्ट करता है। इसका शाब्दिक अर्थ भीमा का स्थान होता है जो मातृदेवी का एक रूप है। भीमा स्थान वास्तव में भीम का शरण स्थल है जो माँ देवी का स्वरूप है इसकी तिथि कमरि में है जो पाकिस्तान के पेशावर जिला के साहबाज गढ़ी नामक स्थान के करीब स्थित है। पहले की शाक्त धर्म से सम्बन्धित कृत मारकण्डे पुराण में हिमांचल के भीमा देवी का उल्लेख मिलता है। सातवीं शदी ईस्वी में इस तीर्थ का सम्बन्ध प्राचीन गान्धार देश से था जो रावल पिण्डी के पेशावर क्षेत्र में है। जिसका दर्शन चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया था पालुसा से 8 मील उत्तर पूरब में एक ऊँचा पर्वत था जिसकी समानता काले पत्थर से निर्मित महेश्वरी पति भीमा देवी से था। स्थानीय गणना के अनुसार यह देवी स्वयं भू मूर्ति है जो भारत के सभी भागों से आये हुए भक्तों के महान और विलक्षण शरण के रूप में प्रदर्शित है सच्चे आस्तिक वे हैं जो सात दिन व्रत के पश्चात उनकी प्रार्थना करते हैं। देवी ने कभी-कभी उन्हें दर्शन दिया तथा प्रार्थना सुना पर्वत के पैर पर महेश्वर देव शिव का एक मन्दिर है जिसमें शरीर पर भस्म मलने वाली तीर्थकाँ होती हैं जिन्हें पशुपत सम्प्रदाय की योगिनियाँ कहा जा सकता है वे उनका पूजन करती हैं। विदेशी यात्री ह्वेनसांग विवरण से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भीमा तीर्थ के महत्व और प्रसिद्धि को स्पष्टतः प्रदर्शित किया गया है। भीमा शिखर के निचले भू-भाग में शिव मन्दिर का अस्तित्व उनके भैरव से सम्बन्ध स्पष्ट करता है वरन् यह भी संकेत करता है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग से पहले का यह शाक्त पीठ था। मोहनजोदड़ो से प्राप्त वस्तुओं में मातृ-देवी की बहुसंख्यक प्रतिमाएँ हैं जो उसके विस्तृत प्रचलन की ओर संकेत करती हैं ऐसी प्रतिमाएँ जो प्राग-ऐतिहासिक एवं बाद के विभिन्न स्थलों से प्राप्त की गयी हैं। इसमें प्राप्त मातृ-देवी सामान्यतः नग्न मिलती हैं लेकिन विशिष्ट प्रकार का सर का पहनावा करती हैं और एक विशाल करधनी तक साथ-साथ बहुसंख्यक मात्रा में आभूषण पहनती हैं। हड़प्पा से

प्राग-ऐतिहासिक काल की मृण्मूर्ति मिली है जिसमें मातृ-देवी का उल्टा अंकन है सर नीचे तथा पैर ऊपर उनके गर्भ से एक पौधा निकल रहा है। सामने दो शेर बायीं तरफ आमने-सामने अंकित हैं। मातृ-देवी का शेर से सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए इस अंकन के अध्ययन की आवश्यकता है। प्राग-ऐतिहासिक काल से मातृ-देवी की पूजा का मूलभूत प्रत्यय सम्पूर्ण सृष्टि के स्रोत के रूप में एक मातृ-देवी सत्ता है। ऐसा लगता है कि हड़प्पा सभ्यता घाटी के लोग देवी के प्रतीक के रूप में योनि की भी पूजा करते थे जिस तरह पितृदेव शिव के लिंग की पूजा लोग करते थे बहुत सी वस्तुएँ मोहनजोदड़ो से पायी गयी है। इन प्राप्त वस्तुओं की ऊपरी निचली सतह लहरदार है जबकि कुछ में निचली सतह समतल है। मार्शल इन वस्तुओं को योनि के चित्रण के रूप में देखते हैं जो कि स्त्री जननांग मातृ-देवी एवं उत्पादकता का प्रतीक है। बाद के काल में दूसरे स्थलों से बहुत सी योनि घुण्डियाँ प्राप्त की गयी हैं। ऐसा हमें तक्षशिला एवं राजघाट से ज्ञात है जिनका सम्बन्ध योनि सम्प्रदाय से था।<sup>13</sup>

उड़ीसा के शुल्की शासक के देवता का नाम स्तम्भेश्वरी था। देवी स्तम्भेश्वरी की आज की उड़ीसा के विभिन्न जनजातियों के लोग पूजा करते हैं। ऐसा उड़ीसा में कतिपय हिस्सों में होता है जहाँ इनका स्थानीय नाम खम्भेश्वरी मिलता है।<sup>14</sup> शुल्की शासक केवल महेश्वर के उपासक थे।<sup>15</sup> देवी के नाम से यह स्पष्ट होता है कि वह स्तम्भ से निकली जिसका लिंग से सम्बन्ध माना जाता है। शक्ति से सम्बद्ध पूर्वी भारत से ज्ञात है।<sup>16</sup> इस प्रकार यह शिव की अनुचरी हुई उड़ीसा के भंज परिवार के एक शासक ने देवी स्तम्भेश्वरी से वरदान प्राप्त किया था। यद्यपि वह स्वयं विष्णु का उपासक था।

हरिवंश पुराण में भगवान शिव का 'पुत्र-प्रदाता' के रूप में प्रतिष्ठा की गयी है। शिव बाणासुर को अपने और देवी पार्वती के पुत्र के रूप में स्वीकार कर लेते हैं (हरिवंश



2/116/17) कृष्ण से हुए युद्ध में बाणासुर रक्त से लथपथ होकर व्याकुलता को प्राप्त होता है। तथापि नन्दी द्वारा प्रेरित होकर भगवान शिव के समक्ष नृत्य करता है। नृत्य करता है एवं वरदान माँगता हुआ कहता है—

यथाहं शोणिलैर्दिग्धो भृशार्तोब्रणपूर्तितः।

भक्तानां नपृत्यता देव, पुत्रजन्म भेद्भव।।<sup>17</sup>

अर्थात् जिस प्रकार मैं आर्त धाव से पीड़ित एवं खून से लथपथ होते हुए भी नृत्य कर रहा हूँ, इस तरह भक्ति भाव से आपके सम्मुख करने वाले भक्तों के यहाँ पुत्र का जन्म होवे।

बाणासुर ने ये नृत्य युद्ध में आहत होकर किया है, यह स्थिति अभी शिव भक्तों के लिए प्राप्त होना आवश्यक नहीं है। अतः भगवान शिव ने समस्त भक्तजनों के लिए किसी भी सामान्य परिस्थिति में नृत्य करने पर पुत्र प्राप्ति का वरदान देते हुए कहा है कि

निराहाराः क्षमावन्तः सत्यार्जव समाहिताः।

मद्भक्ता येअयलिनृतयन्ति तेषामेव भविष्यति।<sup>18</sup>

अर्थात् जो मेरे भक्त जन निराहार, क्षमाशील सत्य और सरलता से संयुक्त रहकर, एकाग्रचित्त हो मेरी प्रसन्नता के लिए नृत्य करेंगे उन्हें ऐसा ही फल प्राप्त होगा अर्थात् पुत्र की प्राप्ति होगी। इस प्रकार हरिवंश में शिव ने अपने उपासकों को पुत्र कामना पूर्ण करने का वर प्रदान किया है। श्रद्धा—विश्वास सम्पन्न शिवभक्त शिवशक्ति के महापर्व पर उक्तानुसार क्षमा, सत्य, सरलता आदि गुणों से समन्वित होकर नृत्य करते हुए अपनी पुत्र—कामना पूर्ण कर सकते हैं।

सामान्य मानव ही नहीं हरिवंश में कृष्ण जैसे दिव्य पुरुष भी पुत्र प्राप्ति हेतु भगवान शिव की उपासना करते हुए चित्रित किये गये हैं। देवी रूक्मिणी कृष्ण से उत्तम पुत्र की याचना करती हैं, तब कृष्ण ने पुत्र की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा कि—

पुदस्त्राणात् ततः पुत्रमिहेच्छति परत्र च ।

अनन्ताः पुत्रिणो लोकाः पुरुवस्य प्रिये शुभा ।<sup>19</sup>

पुत्र नामक नरक या दुख से पिता-माता का परित्राण करने के कारण सारा जगत इहलोक एवं परलोक के लिए पुत्र की इच्छा करता है पुत्रवान पुरुष के लिए अनन्त पुण्यलोक विद्यमान हैं। इस प्रकार कहते हुए कृष्ण ने रूक्मिणी देवी को पुत्र प्रदान करने का आश्वासन देते हुये कहा—

एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलाशं पर्वतोन्तममं ।

तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम् ॥

ततो लब्ध्वास्मि पुत्र ते भावद् भूतहितेन श्तात ।<sup>20</sup>

हे प्रिये मैं अभी पुत्र की प्राप्ति हेतु उत्तम पर्वत कैलाश को जा रहा हूँ वहाँ लोकहित में तत्पर रहने वाले भगवान शंकर से तुम्हारे लिए पुत्र प्राप्त करूंगा। कृष्ण पुनः कहते हैं कि मैं आज ही अविनाशी भगवान शंकर के दर्शन करने के लिए जाऊँगा तथा कैलाश पर तपस्या करूँगा, मेरे द्वारा किये गये तप से प्रसन्न होकर शिव निश्चय ही मुझे पुत्र देंगे ।<sup>21</sup>

रानी रूक्मिणी से ऐसा कहकर कृष्ण कैलाश पर जाकर बारह वर्ष तक कठोर तपस्या करते हैं तब भगवान शंकर प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन देते हैं और कहते हैं कि प्रभो! आपकी तपस्या किसलिए हो रही है। हे देव! यदि आप पुत्र प्राप्ति हेतु तप कर रहे हैं, तो मैंने पहले से ही आपको पुत्र दे रखा है ।<sup>22</sup> कामदेव को पुत्र रूप से नियुक्त करने का संकेत देते हुए शिव ने कहा—

नियुक्तः पुत्ररूपेण सते देव जगत्पते ।

ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्न अइति अभिविश्रुत ।।23 ।।

इस प्रकार भगवान शंकर कृष्ण की पुत्र कामना पूर्ण करते हैं। विष्णु पर्व में रूक्मिणी के दस पुत्रों के जन्म का उल्लेख किया गया है।<sup>24</sup> पुराण के भविष्य पर्व में ही राजा ब्रह्मदत्त द्वारा की गयी शिव आराधना से हंस और डिम्भक नामक पुत्रों की प्राप्ति होना वर्णित है। राजा ब्रह्मदत्त अपनी दोनों पत्नियों के साथ दस वर्षों तक शिव की अर्चना करते हैं।<sup>25</sup> शिवजी की कृपा से दोनों रानियाँ दो महापराक्रमी पुत्रों को जन्म देती हैं, जो हंस और डिम्भक नाम से विख्यात होते हैं।<sup>26</sup>

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाभारत के खिलकाग पुराणों में से एक होने पर भी जिसे पात्र हरिवंश कहा जाता है उसके उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि इस कृत की रचना से काफी पहले ही शिव की जनमानस में पुत्र प्रदाता देवता के रूप में मान्यता स्थापित रही होगी। इस तथ्य को हरिवंश के रचनाकार ने स्वीकारा और उसका उल्लेख भी किया इस रूप में शिव का मान्य होना अपने में महत्वपूर्ण है क्योंकि हम मातृ-देवी को उत्पादकता से सम्बन्ध मातृ-देवी को शिव से जुड़ा पाते हैं। बाणासुर को पुत्रत्व प्रदान करने तथा कृष्ण जैसे दिव्य पुरुष व राजा ब्रह्मदत्त को पुत्र प्राप्ति कराने के कारण, शिव के भक्तों के प्रिय, भक्तों को वर प्रदान करने वाले महादेव निरूपित किया गया है।

गौरी शिव की शक्ति है, शिव ही हर है, और गौरी को शिव की पत्नी माना गया है। देवी गौरी के विभिन्न नामों में उमा, पार्वती, रम्भा, तोतला, त्रिपुरा और श्री हैं। श्री स्वयं गौरी सम्बद्ध है और सातवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य तक गौरी प्रारम्भिक चालुक्य द्वारा पूजी

जाने लगी थी। उड़ीसा सत्रुघ्नेश्वर मन्दिर में हर और गौरी की कमल के रूप में दिखाया गया है (चित्र 108)।

चालुक्य काल के दो मुख्य शिव मन्दिर सिद्धानकोला में लकुलिस मन्दिर और आलमपुर का बाल ब्रह्मा मन्दिर के सह मन्दिर में मातृ-देवी की आज भी पूजा होती है जिन औरतों की पुत्र नहीं होता था वे युगल जो पुत्र होने का आशीर्वाद चाहते हैं। इन मन्दिरों की यात्रा करते हैं। इन मन्दिरों के ठीक सामने सप्तमात्रिकाओं का भी एक सह मन्दिर स्थापित है। इन मन्दिरों में बहुत सी मातृ-देवी की प्रतिमाएँ पशुपति को समर्पित है। सात माताओं की पूजा का उल्लेख ऋग्वेद में ही आता है, वहाँ उन्हें सप्तमातरः कहा जाता था। वे सात अप्सरायें थी, जिनमें उर्वशी मुख्य थी। लोक कथाओं में उन्हें सात अछरा माई कहा गया है। ये सात माताएँ एक महीमाता अदिति के ही सात रूप थे वह सात आदित्य देवों की माता थी। अदिति ही आगे चलकर बड़ी-बड़ी देवियों के रूप में विकसित हुई जैसे सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मणी, लक्ष्मी, पार्वती। भारतवर्ष के धर्मों और कथाओं में देवियों का प्रमुख स्थान है। आर्यावती, कोट्टवी, षष्ठी, चर्चिका, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी आदि देवियों में रूपभेद और युगभेद है, किन्तु उनकी मूल कल्पना का सूत्र एक ही है। कुषाण और गुप्तकाल में सप्तमातृकाओं की बहुत सी मूर्तियाँ बनी। प्राचीन सात माताओं को अब सात नये देवताओं की शक्तियों के रूप में अंकित किया गया। जैसे-ब्राह्मणी विष्णु की वैष्णवी, शिव की महेश्वरी, वराह की वाराही, पनरसिंह की नारसिंही, कुमार की कौमारी और यम की चामुण्डा।<sup>27</sup>

प्राचीन मूर्तिकला सम्बन्धी ग्रन्थों में एक हिन्दू देवी की मूर्ति सामान्यतः अपने विवरण से पहचानी जाती है। यदि यह मूर्तिकला सन्दर्भों में न प्राप्त हो तो देवताओं की पूजा से परिचित कोई पुजारी इनकी पहचान कर सकता है या ग्रामीण इनकी पहचान कर सकते

हैं। मातृ-देवी की प्रतिमाओं के परिचय के लिये दोनों उत्तरवर्ती स्रोत विद्यमान हैं। किन्तु उन पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता विशेष रूप से विक्टोरियन दृष्टिकोण द्वारा प्रस्तुत मातृ-देवी की स्थिति के सन्दर्भ में जो विभिन्न संग्रहालयों के माध्यम से प्रगट करता है। इस देवी की उपासना की परम्पराओं में आधुनिक विद्वान मतभेद प्रस्तुत करते हैं।

पैनोफस्की ने मूर्तिकला के अपने विचार में जो विभिन्न सन्दर्भ रखे हैं उनमें उसके विभिन्न अंगों के प्रतीकों की पहचान वर्तमान पौराणिक आख्यानों के आकलन पर आधारित है<sup>28</sup> जैसे नाम, दंतकथायें और पूजापद्धति आदि। यह पाया गया है कि मातृ-देवी की प्रतिमाओं की विशेषताओं में हिन्दू पद्धति के अनुसार कोई विरोधाभाष नहीं है अर्थात् प्रत्येक प्रमाण मातृ-देवी की प्रतिमाओं के पहचान को उत्पादकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया जो हिन्दू धर्म तथा शैव धर्म के सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। छठी शताब्दी ईस्वी तक मातृ-देवी को शिव की शक्ति के रूप में माना गया है। शिव तथा शक्ति आद्य तत्व है। शिव प्रकाश रूप है और वे स्फूर्ति रूप शक्ति में प्रवेश करते हैं और बिन्दु का रूप धारण कर लेते हैं। शक्ति इसी प्रकार शिव में अनुभविष्ट होती है। बिन्दु बढ़ता है उसमें नाद या स्त्रीत्व निर्गत होता है बिन्दु तथा नाद मिलकर एक हो जाते हैं—यह स्त्री-पुरुष शक्तियों का योग है, इसे काम कहते हैं। श्वेत और रक्त बिन्दु कला विशेष है। ये तीनों संयुक्त बिन्दु बनते हैं। श्वेत, रक्त और मिश्र बिन्दु मिलकर कामकला कहे जाते हैं। इस तरह चार शक्तियों का समन्वय हुआ पहला मूल बिन्दु, दूसरा—नाद, तीसरा—श्वेत पुरुष बिन्दु और चौथा—रक्त स्त्री बिन्दु। ये चारो मिलकर कामकला का रूप धारण करते हैं और सृष्टि का आरम्भ होता है। भण्डारकर के अनुसार 'जब स्त्री तत्व प्रथम बार बिन्दु में प्रविष्ट होता है तब नाद के साथ अर्धकला नामक एक अन्य तत्व भी विकसित होता है उच्चतम

देवी को एक ग्रन्थ में कामकला माना गया है। सूर्य उनका मुख है अग्नि तथा चन्द्र उरोज है, अर्धकला योनि है जिससे कि सृष्टि का आरम्भ होता है। यह देवी मातृ-देवी की भाँति उत्पादकता की देवी है।<sup>29</sup>

मातृ-देवी के चार अलग-अलग प्रारूप भारतवर्ष के क्षेत्र और काल को स्पष्टतः प्रदर्शित करते हैं, तो इस खोज का क्या महत्व है और क्यों ये चारो प्रारूप क्षेत्रीय और मौद्रिक रूप से इनका संगठन संकेत करता है, कौन सी सामाजिक और धार्मिक प्रक्रिया इनको प्रभावित करती है। इन प्रतिमाओं के भौतिक प्रमाण का अध्ययन भारतीय मूर्तिकला के बारे में क्या बताता है, क्या मातृ-देवी हमको यह सूचना देती है कि भारतीय देवियों की प्रतिमाओं का विकास किस प्रकार हुआ, क्या तथ्य ये क्या सन्दर्भ थे, जिन्होंने भारतीय कला को एक प्रतीक अर्थ दिया।

इस देवी की प्रतिमा में होने वाले परिवर्तन व्यक्त प्रतीक वानस्पतिक भागों से साम्य और कमल सर कम से कम चार शताब्दियों के परिवर्तन के प्रमाण हैं। साउथ एशिया इण्टर डिप्लोमैटिक रीजनल रिसर्च प्रोग्राम, उड़ीसा रिसर्च प्रोजेक्ट जो हिडेलबर्ग विश्वविद्यालय से सम्बन्धित शोध कार्य प्रकाशित किया गया था। यह प्रकाशन सन्दर्भित ग्रन्थों की कमी को पूरा करता।<sup>30</sup> ऐन्र्चलाट्ट एकमैन ने उड़ीसा के जगन्नाथ संस्कृति के बारे में यह स्पष्ट किया है कि उड़ीसा के कबीलाई या ग्रामीण देवियों का किस प्रकार हिन्दू धर्म में आत्मसात किया गया है। वह टिप्पणी करती है कि हिन्दू धर्म के पास दूसरे धर्मों और विदेशी संस्कृतियों को आत्मसात करने की असाधारण क्षमता है। कबीलाई भारत में देवताओं की प्रतिमाएँ कम।<sup>31</sup> इनके मन्दिरों में सामान्यतः प्रतीक रूप में पत्थर, छड़ियाँ बर्तन आदि हैं। जहाँ कहीं कबिलाई समूह हिन्दू बस्तियों के करीब रहे हैं उनकी संस्कृति हिन्दू मन्दिरों का अंग बन गयी। हर्मन कुल्क ने इस सम्मिलन का कारण बताया है कि

इस प्रकार का एक हिन्दू मन्दिर (ग्रामीण संस्कृति) तीन विशेषताओं के कारण भिन्न था।<sup>32</sup> प्रथम प्रतिदिन की, दूसरा सभी जातियों द्वारा स्वीकृत तीसरा स्थानीय स्तर से बड़े स्तर तक। इस सन्दर्भ में एक हिन्दू ग्राम देवी को क्षेत्रीय से अधिक महत्व मिला जाता था<sup>33</sup> और यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में ऊचे स्तर पर पूज्य हो जाती थी। एकमैन ने इस विधि को ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत समायोजित करना कहा है। आंग्ल भाषा में इसे ब्राह्मणाइजेशन कहा गया है मन्दिर के स्तर पर जो पूजा होती थी आदिवासियों के उपास्य देवियों के विपरीत मूर्तियों की होती थी जब आदिवासियों का कोई प्रतीक हिन्दू मन्दिरों में रखा जाता था तो उसे किसी देवी के समकक्ष रख दिया जाता था। एक स्थानीय संस्कृति की देवी को जब राजकीय संरक्षण मिल जाता था तो वह पारम्परिक हिन्दू देवी के रूप प्रस्तुत की जाती थी।<sup>34</sup> मातृ-देवी के सन्दर्भ में राजकीय संरक्षण का पहला उदाहरण नागार्जुन कोण्डा में मिलता है। मातृ-देवी की यह प्रतिमा प्रारूप-3 की तरह है। प्रारम्भिक चालुक्य काल से सातवीं शताब्दी ईस्वी में ऐसी बहुत सी प्रतिमाएँ प्रमुख शिव मन्दिर में रखी गयी। लगभग इसी काल में सम्भवतः मातृ-देवी को हिन्दू धर्म से आत्मसात कर लिया गया तथा पौराणिक रूप से शिव से सम्बन्धित माना गया।

रुचिकर बात यह है कि एकमैन कहते हैं कि प्रतिमा की सबसे पहली आवश्यकता एक सर है मातृ-देवी के सन्दर्भ में देवी का मूल रूप एक बर्तन है तो उत्पादकता की देवी के रूप में उसके पैरों को उत्तानपाद स्थिति में रखा गया है।<sup>35</sup> बर्तन को स्पष्ट रूप से उसके गर्भाशय के रूप में प्रस्तुत किया गया है यह तथ्य की प्रथम तीन प्रारूपों के सर नहीं हैं अपितु एक कमल का फूल है। इस देवी को उन देवी की प्रतिमाओं से अलग करती है जिनके मात्र सर हैं। इसकी व्याख्या मातृ-देवी की प्रतिमाओं के उत्पादकता की पूजा सम्बन्धित प्रक्रिया से है। इसीलिए वह कभी-कभी भुजाविहीन है, क्योंकि उसकी शक्ति

विभिन्न स्त्री अंगों जैसे गर्भाशय और स्तनों में है। मातृ-देवी सम्भवतः आदिवासी या स्थानीय ग्रामीण स्तर पर ग्राम्य देवी के रूप में विकसित हुई जिसमें बर्तन को उसकी उत्पादकता के रूप में चित्रित किया गया उसके चौथे रूप को पाँच सौ शताब्दी ईस्वी में प्रस्तुत किया गया जो एलिफैंटा में प्रदर्शित है (चित्र 76) तथा एलोरा की 21 वीं गुफा में 550 ईस्वी में प्रदर्शित है (चित्र 75) गुजरात में छठीं-सातवीं शताब्दी ईस्वी में प्राप्त (चित्र 77, 82, 86) आदि प्रकट करती है कि इस प्रक्रिया का ब्राह्मण धर्म में आत्मसात पूर्ण हो गया जब वह शिव के साथ सम्बन्धित हो गयी प्रारूप 1-2 और 3 प्रकार की आकृतियों में क्षेत्रीय सम्बन्ध है किन्तु चौथी आकृति में मातृ-देवी ने पूर्णतः भारतीय होने का ब्राह्मणीय स्तर प्राप्त कर लिया, जैसा कि एलोरा-21 की छठीं-सातवीं शताब्दी ईस्वी की प्रतिमाओं से स्पष्ट है। आन्ध्र-प्रदेश से प्राप्त (चित्र 104-107) मृदपट्टिका अधिक रूचि का विषय है जो मातृ-देवी को कुछ अन्य देवताओं ब्रह्मा, लिंगरूपी शिव, मातृ-देवी कार्तिकेय और एक सिंह जो सम्भवतः शक्ति का वाहन है के साथ पाते हैं।

हिन्दू ढाँचे में क्षेत्रीय जनजातीय देवियों का प्रवेश एक राजनैतिक प्रेरणा है और समुचित मन्दिर एक रोचक प्रसंग है। वास्तव में इस समय एक स्तरीय मानक अपनाया गया विविध गाँवों से सम्मान अर्जित करने के लिए एवं राज्य के अन्तर्गत जनजातियों से या जनजातीय देवी-देवताओं को राजकीय स्तर पर लाने के लिए राजकीय मन्दिरों का मिश्रण था। इस प्रकार उसका संग्रह हिन्दुत्व में लाया जा रहा था।<sup>36</sup> अभ्यास किया जा रहा था वफादारी प्राप्त करने का ताकि राज्य की सुरक्षा की जाय जो एक ऐतिहासिक अध्ययन में प्रयुक्त अन्य स्मरण पत्रों में ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार चालुक्य राजा विनयादित्य ने सन्तानहीन दम्पति पर कर लगाया था। वह साक्ष्य स्पष्ट करता है कि आदेलन को मूर्त रूप देने के लिए जैसे कि राजा को सैनिकों की आवश्यकता थी। अतः



उन्होंने प्रत्येक मन्दिरों में उत्पादकता की देवी मातृ-देवी की प्रतिमा लगवा दी। इस तरह का साक्ष्य बेल्लीगाँव से प्राप्त है जहाँ मातृ-देवी की पूजा अब भी होती है (चित्र 61)।

मातृ-देवी की राजकीय विरासत का एक निश्चित उदाहरण नागार्जुनकोण्डा से इक्ष्वाकु रानी महादेवी खैनदबला है (चित्र 42) पत्थर की इस प्रतिमा के निचली सतह पर एक अभिलेख कुरेदा गया है। जिसकी तिथि चौथी शताब्दी ईस्वी हो सकती है। मैं विश्वास करता हूँ कि यह प्रतिमा प्रारूप-3 को सुनिश्चित करती है।

नैसर्गिक रूप से ग्रामीण देवी की पूजा उत्पादकता के रूप में द्वितीय शताब्दी ईस्वी में की जाती थी (प्रारूप-1) तीसरी शताब्दी ईस्वी में देवी का प्रारूप-3 के रूप में दक्षिण भारत में विस्तार हुआ था और उन्हें राजकीय संरक्षण दिया गया। छठीं शताब्दी ईस्वी में देवी का मानवीकरण प्रारूप-4 को राजकीय संरक्षण मिला था। इस तरह का प्रमाण एलोरा गुफा 21 से ज्ञात होता है। सम्भवतः प्रारम्भिक चालुक्य राजाओं द्वारा इस प्रतिमा का राजकीयकरण हुआ था।

इस देवी को शासन द्वारा ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत धीरे-धीरे विविध शासकों के काल में अलग-अलग समय तथा क्षेत्रों में हुआ। मातृ-देवी की प्रतिमा का प्रारम्भिक चालुक्यों के समय सातवीं शताब्दी ईस्वी के ब्राह्मणीकरण की अभिक्रिया विशेष है क्योंकि अन्यो की अपेक्षा इसका प्रसंग पूर्णतः दृष्टिगत है। इसकी प्रतिमाएँ मन्दिरों के मिश्रण का एक अंग है। विशिष्टतया बेल्लीगाँव में मुख्य शिव पशुपति मन्दिर के सामने उत्पादकता की देवी के रूप में प्रतिमाओं का प्रस्ताव एक नये राजनैतिक, धार्मिक प्रेरणा की तरफ संकेत करता है।

मातृ-देवी के ब्राह्मणीकरण के क्षेत्र के प्रति चालुक्य सचेष्ट थे जबसे उन्होंने अपने उपयोग के लिये अपनाया। वे इक्ष्वाकुओं से सांस्कृतिक रूप से जुड़े हुये थे। इसलिये यह

कम आश्चर्यजनक है कि प्रारम्भिक चालुक्य मूर्तिशास्त्र में उसी प्रारूप चुनाव एवं उपयोग किया जैसे देवी के प्रारूप का इक्ष्वाकुओं ने उपयोग किया था।

यद्यपि चित्रित प्रतिमा के बर्तन जो गाँव में पूजे जाते थे कुछ निश्चित क्षेत्र और समय में मन्दिर के स्तर तक उठ गये। इसी तरह मातृ-देवी की प्राचीन पूजा पद्धति निरन्तर होती रही है। इस तरह के चित्रित बर्तन नेपाल के भगतपुर क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।

जीवन्त आकार की मातृ-देवी की प्रतिमा पत्थर की है। छोटी प्रतिमाएँ सपाट आकार में विभिन्न स्थलों में पायी जाती हैं। तेर संग्रहालय में लगभग 30 प्रतिमाएँ छोटे-छोटे टुकड़े में सुरक्षित रखे गये हैं। छोटी प्रतिमाओं का केन्द्रीयकरण कौशाम्बी, सन्नाटी और कोण्डापुर में पाया गया है। शायद ये स्थान उत्पादकता की तीर्थस्थली थे और छोटे पत्थर या पकी मिट्टी की पट्टिका की प्रतिमाएँ पूजा-अर्चना के रूप में प्रयोग की जाती थी। परिणामतः कुछ निश्चित स्थल पर ये बहुसंख्यक पड़ी हुई हैं। यह देखने योग्य है कि सातवीं शताब्दी ईस्वी में चालुक्यों ने मातृ-देवी की जीवन्त आकार के पत्थर की प्रतिमाएँ बनवायी। चालुक्यों ने मातृ-देवी की कोई भी प्रतिमा छोटे आकार या पकी मिट्टी की पट्टिका की नहीं बनवाई। उसके समय की मातृ-देवी की सभी प्रतिमाएँ जीवन्त आकार में पत्थर की हैं।

मातृ-देवी छोटे स्तर से हिन्दू पंथ में पिछले दरवाजे से प्रवेश हुई इनकी प्रारम्भिक प्रतिमाएँ साधारणतया बर्तनों पर चित्रित की गयी हैं। दूसरी शताब्दी ईस्वी तक निश्चय ही इन क्षेत्रीय देवियों का ब्राह्मणीकरण हो गया। अर्थात् समुचित हिन्दू देवी के साथ इनका परिचय हुआ, विशेष रूप से गौरी के रूप में श्री और पृथ्वी के साथ इनका परिचय हुआ।

मातृ-देवी की प्रतिमा के बदलते हुए आकार के पीछे हम सामाजिक और राजनैतिक प्रेरणा को मानते हैं। उत्पादकता के रूप में पूजा के लिए उसका महत्व कुछ रोचक धार्मिक

और राजनैतिक क्षेत्रों में होता था। हम क्षेत्रीय परिचय के प्रभाव को समान रूप से देखते हैं और कुछ क्षेत्र के अन्तर्गत उनके प्रभाव पर सांस्कृतिक प्रभाव भी दिखाई पड़ता है।

बहुसंख्यक प्रारूप—3 देवी की प्रतिमा चौथी से दसवीं शताब्दी ईस्वी तक गुजरात, मध्य—प्रदेश, आन्ध्र—प्रदेश और कर्नाटक में अस्तित्व में थी। यद्यपि प्रारूप—2 सतत अस्तित्व में रहने वाली थी। प्रारूप—2 केवल महाराष्ट्र और मध्य—प्रदेश में बनायी गयी थी। प्रारूप—4 महाराष्ट्र और गुजरात के दक्षिण में बनायी गयी और पायी गयी। मातृ—देवी की प्रतिमा प्रारम्भिक शताब्दी ईसवी की अपेक्षा बाद की शताब्दियों में दुगुनी प्रतिमाएँ ज्ञात हुईं। इस प्रकार की अन्तर्निहित तथ्य की प्रवृत्ति हिन्दू देवियों उसका प्रवेश था। जैसा कि उसके पूर्वकाल में ग्रामीण देवी के रूप में उसका अस्तित्व था।

अति महत्वपूर्ण और एक मात्र ऐतिहासिक मूर्ति शास्त्र की कृति तेर है। तेर हिन्दू और बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण स्थली है और साथ—साथ पश्चिमी व्यवसाय का केन्द्र भी था। जैसा कि 'पैरीप्लस आफ एरिथ्रियन सी' से ज्ञात है।<sup>37</sup> तेर से तीन प्रकार की मातृ—देवी की प्रतिमाएँ ज्ञात हैं।

मातृ—देवी की ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी की सबसे अन्तिम प्रतिमा की सूचना धेरे द्वारा दी गयी है जो कर्नाटक से मिली है। सम्भवतया हिन्दू धर्म पर इस्लाम के बढ़ते प्रभाव के कारण उसकी प्रतिमाओं का क्षय हुआ और उन प्रतिमाओं के स्थान पर तान्त्रिक प्रतीक योनि को स्थापित किया गया और बाद में उत्पादन के लिए योनि की आराधना तन्त्र में हुई। मातृ—देवी की प्रतिमा प्रारम्भिक ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी तक मूल रूप से अपना स्थान खो बैठी।

इस प्रकार धीरे—धीरे हम यह पाते हैं कि योनि पूजा से उत्पादकता फिर सिर विहीन उत्तानपाद रूप अपने विकास क्रम में पकी मिट्टी एवं प्रस्तर प्रतीक के रूप में विकसित हुई

और तन्त्रों तथा इस्लाम के साथ धीरे-धीरे पुनः योनि प्रतीक रूप में परिवर्तित हुई तन्त्रों के प्रसार से इसका प्रतिमा स्वरूप तिरोहित हो गया और योनि प्रतीक रूप की पूजा भी तन्त्र सम्मत रह गयी। यत्र-तत्र यह सम्भव है कि इसके कुछ प्रमाण बाद के काल में मिले किन्तु मूल रूप से अपने स्वरूप को खो बैठी।

निष्कर्षतः मातृ-देवी के प्रारूप-1 के बाद के काल में इसी प्रारूप के आधार पर तीन प्रकार के प्रारूपों का विकास हुआ जो लगभग समान काल में स्थापित रहे फिर भी विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर इन्हें हम प्रारूप-2, प्रारूप-3 तथा प्रारूप-4 कहा है।

## नोट्स

1. देखें : अद्भुत भारत, ए०यल० वाशम (रीडर, भारतीय इतिहास विभाग लन्दन विश्वविद्यालय) अध्याय 7, धर्मपूजा एवं अध्यात्म ज्ञान पेज 250 ।
2. देखें : अद्भुत भारत, ए०यल० वाशम (रीडर, भारतीय इतिहास विभाग लन्दन विश्वविद्यालय) अध्याय 7, धर्मपूजा एवं अध्यात्म ज्ञान पेज 261-62 ।
3. देखें : प्राचीन भारत का इतिहास, राधाकृष्ण चौधरी अध्याय-3 प्रागैतिहासिक भारत पृष्ठ 29-30 ।
4. जेण्ड अवेस्टा 1, पृष्ठ 201 ।
5. यफ० मैक्स-मुलर, सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट-द-लाज, आफ मैनु, वालूम-1, पृष्ठ 231 ।
6. देखें : प्राचीन भारत में देवदासी प्रथा-डॉ० रमेश चन्द्र यादव, पृष्ठ 19-20 ।
7. सी सक्तपीठ : डी० सी० सरकार : अपेन्डिक्स IV शिव एण्ड शक्ति इन द आर्थोडाक्स इण्डियन पैथन ।
8. ऋग्वेद VII, 21, 5, X, 99, 3 ।
9. रघुवंश 4, 51 स्तनाविव दिशस्तस्या : शैलो मलयदुर्दुरौ ।
10. सी सक्तिपीठ : डी० सी० सरकार : अपेन्डिक्स IV ।

11. सी०यफ० महाभारत, III, 82, 83—85, III, 84, 93—95 एण्ड 151—53 ।
12. सी०यफ० गौरी—गुरु (फादर आफ गौरी), एन इपीथेट आफ द हिमालया इन रघु, II, 26 : किरात, V, 21 : बादल पिलर इंस्क्रिप्सन वर्से 5; गौदलेखमला, पेज 27 ।
13. सी०ओ०पी०, सिट०, पी०पी० 183 यफ०यफ० ।
14. इपी० इण्ड, वालूम XXVIII, पी० 112 ।
15. डी० आर० भण्डारकर लिस्ट, नोस० 1697—98, 1700 ।
16. सच लिंगस विथ द रीप्रेजेन्टेशन आफ शक्तिस बीइंग फाउण्ड इन इस्टर्न इण्डिया, सी०यफ० हेस्ट० बेन्ग०, I, पी० 452 ।
17. हरिवंश, 2 / 126 / 152 ।
18. हरिवंश 2 / 126 / 153 ।
19. हरिवंश, 3 / 73 / 30 ।
20. हरिवंश, 3 / 73 / 35—36 ।
21. हरिवंश, 3 / 73 / 38 गमिष्याम्हम अद्यैव दृष्टुं शंकरमव्ययन ।  
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया ॥
22. हरिवंश, 3 / 88 / 4—5 पुत्रार्थि यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ।  
पुत्रो दत्तो मया देव पूर्व मेव जगत्पते ॥
23. हरिवंश 3 / 88 / 13 ।
24. हरिवंश 2 / 60 / 36—39 ।
25. हरिवंश, 3 / 104 / 6 सराजा सहितस्ताभ्ययामर्चयामास शंकरम् ।

पुत्रार्थ सूलिनं शर्व दशवषण्यिनन्यधीः ॥

26. हरिवंश, 3/104/13 महिष्यौ ते महावीर्यो पुत्रौ शंकर निर्मितौ ।  
असूयेतां..... ॥
27. देखें भारतीय कला : अग्रवाल अध्याय 14 संस्कृत युग की कला में प्रतीक पृष्ठ  
345-46 ।
28. पनफस्की, 1955 ।
29. देखें ब्राह्मण धर्म और दर्शन : डॉ० यस०यन० दूबे (प्रा० इति०, पुरातत्व संस्कृति)  
अध्याय 20 पेज 226 ।
30. एकमैन, कुल्के, ऐण्ड त्रिपाठी, 1978, चैटर्स 4 ऐण्ड 7 ।
31. आइविड, 81 ।
32. आइविड, 125 एफ०एफ० ।
33. आइविड, 83 ।
34. आइविड ।
35. आइविड, 91 ।
36. आइविड डिस्क्यूज्ड बाइ कुल्के, 132 ।
37. डब्ल्यू०एच० स्कोफ, ट्रेन्स, द प्रिपुलस आफ द इरिथ्रेन से, न्यू डेलही, 1974 ।